स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक। सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर। भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बँधनकर ॥

वर्ष १९ | गौराब्द ४८७, मास—गोविन्द ६, वार—प्रद्युम्न, मंगलवार, २९ माघ, सम्वत् २०३०, १२ फरबरी १९७४ | संख्या ९

फरवरी १९७४

श्रीब्रह्माकृतं श्रीश्रीगर्भोदशायी-स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ३।९।१-९)

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत् त्वदस्ति भगवन्नपि यन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकरात् यदुरुविभासि ॥१॥

श्रीब्रह्माजीने कहा— हे भगवन् ! बहुत समय तक उपासना कर आज मैं आपको जान पाया। आहा ! देहधारी जीवोंका क्या दुर्भाग्य है। क्योंकि वे लोग आपका तत्त्व जान नहीं पाते। आप ही एकमात्र जानने योग्य पुरुष है, क्योंकि आपको छोड़कर किसी भी वस्तुका पृथक् अस्तित्व नहीं है। एवं जो है, ऐसा जान पड़ता है, वह भी शुद्ध सत्य नहीं है। आप जो जगत् रूपसे बहुत रूप होकर प्रकाशित होते हैं, वह भी आपकी बहिरंगा प्रधान रूप माया शक्तिके गुणसमूहके परिणामसे ही जान पड़ता है। अर्थात् वह भी शुद्ध नहीं है ॥१॥

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥२॥

हे भगवन् ! आपसे चिच्छक्तिका नित्यकाल ही आविर्भाव होनेके कारण प्रकृतिके सब प्रकारके गुण स्वयं ही निवृत्त हो गये हैं। उपासकोंके प्रति कृपा विस्तार करनेके लिए गुणावतारोंके आविर्भावके पहले ही सैकड़ों असंख्य अवतारोंके एकमात्र मूल कारणस्वरूप यह श्रीमूर्त्ति आपने भक्तोंके सुखके लिए प्रकट किया है। आपके ही नाभिकमल रूपी भवनसे मैं प्रकट हुआ हूँ ॥२॥

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

हे परमपुरुष ! आपका जो अनाच्छादित प्रकाश निर्भेद आनन्दमात्र ब्रह्मस्वरूप है, उसे इस रूपसे भिन्न नहीं देख रहा हूँ, किन्तु इस अद्वयतत्त्वका ही असम्यक् प्रतीति या अनुभवविशेष है। हे आत्मन् ! इस कारणसे ही उपास्यके बीच मुख्य, अद्वितीय, विश्वकी रचना करनेवाले, इसलिए विश्वसे भिन्न एवं भूतेन्द्रियोंके कारण आपके इस स्वरूपका आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥३॥

तद्वा इदं भुवनमंगल मंगलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसंगैः ॥४॥

हे भुवनमंगल ! हम आपके उपासक हैं। आपने हमारे मंगल विधानके लिए ध्यानमें जो रूप दिखलाया था, निरीश्वरवादी कुतर्कपरायण नारकी व्यक्ति उसका आदर नहीं करता। आप सच्चिदानन्द-विग्रह एवं षड़ैश्वर्यपूर्ण हैं। आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥४॥

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोषगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात् स्वपुंसाम् ॥५॥

प्रभो ! जो सभी शुद्धभक्त आपके पादपद्मके सौरभको श्रुतिरूप सुगन्धित वायुद्वारा प्राप्त कर कानोंद्वारा आघ्राण करते हैं अर्थात् आदरके साथ आपकी कथाको सुनते हैं, वे प्रेमलक्षणयुक्त भक्तियोगसे भजनीय आपके चरणकमलोंको ही परम पुरुषार्थरूपसे ग्रहण करते हैं। हे नाथ ! उन सभी निजजनोंके हृदयकमलसे आप कदापि दूर नहीं होते ॥५॥

तावद्भयं द्रविणदेहसुहृन्निमित्त शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावंममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

'मैं एवं मेरा'—अनात्मभूत असत् वस्तुमें ऐसा जो अभिमान है, यही भय शोकादिका मूल कारण है। हे भगवन् ! जब तक कोई व्यक्ति आपके अभय पादपद्मोंका प्रकृष्ट रूपसे

वरण नहीं करता, तब तक ही उसमें उसके अर्थ, देह एवं आत्मीय-स्वजन-कुटुम्बादि बंधुओं के नष्ट होनेका भय, उनके विनाशसे शोक, फिरसे उन्हें प्राप्त करनेकी लालसा, उसके पश्चात् तिरस्कार, तथापि उनके लिए तीव्र तृष्णा, फिरसे किसी प्रकार प्राप्त करनेपर 'मैं एवं मेरा'-ऐसी जड़ासक्ति वर्त्तमान रहती है।

दैवेन ते हतधियो भवतःप्रसंगात् सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥

हे भगवान् ! आपका प्रसंग सब प्रकारके अमङ्गलोंका विनाश करता है। जो सभी व्यक्ति सर्वदुःख दूर करनेवाले श्रवणकीर्त्तनादिरूप आपके प्रसंगसे विमुख होकर कामसुखकी आशासे लोभपरायण हृदयद्वारा निरन्तर अमङ्गलजनक कार्य किया करते हैं, वे दैव या विधि द्वारा हतबुद्धि एवं दुर्भगे हैं ॥७॥

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवरषैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाच्युतरुषा च सुदुर्भरेण सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥

आहा ! (ये हरिकथाविमुख) जीव भूख, प्यास, वात, पित्त, श्लेष्मा (कफ), शीत, गर्मी, वायु, वर्षा आदि द्वारा परस्पर बारम्बार कष्ट पाते हैं, अत्यन्त कठिनतासे सहनीय कामाग्नि एवं अविच्छिन्न क्रोधके कारण दुःख पाते हैं। हे उरुक्रम ! इनकी ऐसी अवस्था देखकर मेरा मन दुःखित हो रहा है ॥ ८ ॥

यावत् पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो जनो ईश पश्येत् ।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥९॥

हे परमेश ! सभी व्यक्ति जब तक इन्द्रियफल देनेवाली मायाके द्वारा पुष्ट इस देहादि भावोंको आपसे पृथक् जान नहीं पाते, तब तक अनित्य दुःखसमूहको देनेवाला, कर्मफल प्रसवकारी यह संसार व्यर्थ होने पर भी उससे विश्राम नहीं प्राप्त करते ॥ ९ ॥

(क्रमशः)

श्रीव्यासपूजामें श्रीमद्भागवतकी पुनरावृत्ति

आत्मज्ञानियोंमें शिरोमणि श्रीकृष्णद्वैपायन-वेदव्यासके अनुगत व्यक्ति, जो तत्त्ववेत्ता हैं, वे जिन श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु नामक औदार्य लीलामय विग्रहको ज्ञान, ज्ञेय एवं ज्ञाताकी समष्टि बतलाते हैं एवं इन्द्रिय ज्ञानातीत निर्विशेष औपनिषद् परब्रह्म शब्द द्वारा वास्तव वस्तुका धर्म-परिचय कराने के लिए निर्देश करते हैं, सर्वव्यापक तथा बाह्यान्तर्यामी रूपसे जिनका अखण्ड एवं खण्डित भावसे युक्त पूर्ण-अपूर्ण भावका प्रतिद्वन्द्वी, वास्तवमें विशेषता-निदेशकारी भगवद्भावका अंशविशेष परमात्मा जिन्हें कहा जाता है, अनन्त सद्गुणकी विचित्रतासे समृद्ध सच्चिदानन्द विग्रह-लीला-परिकर-नाम-रूप-गुणसे मण्डित, अद्वय ज्ञान वस्तु, चिच्छक्ति विलासपूर्ण जो हैं, उनके हृदयकमलसे उनके श्रीमुखद्वारा प्रकाशित परम कीर्त्तनीय वस्तु श्रीनन्दनन्दनके सेवापरायण वैष्णव गुरुदेवके पादपद्म आश्रित मुझ जैसे अकिंचन व्यक्तिका एक सदैन्य निवेदन है। वह यह है कि श्रीव्यास-पूजाके लिए पूर्णतया अयोग्य अर्चक होनेके कारण मेरा हरिकथा-कीर्त्तन-कार्य उपयुक्त नहीं होनेपर भी एक महान आशासे प्रेरित होकर महाजनोंके आनुगत्यमें श्रीव्यासानुगत बहुतसे सज्जनोंके साथ एकत्र होकर भगवत्सेवा कार्यका व्रत धारण कर रहा है।

श्रीब्रह्माजीके हृदयमें प्रकटित तत्त्व श्रीनारदजीके चरित्रमें प्रकाशित होकर वैष्णव गुरु श्रीवेदव्यासजीकी कृपासे हम उनके अधस्तन होनेके नाते आम्नाय समूहका सार प्राप्त करते है। यह परम्परागत पथ ही 'श्रौत पथ' के रूपमें प्रसिद्ध हैं। जो व्यक्ति श्रीव्यासानुगत्यके प्रति उदासीन हैं, उन लोगों ने अपने अपने इन्द्रिय-ज्ञानसे प्रमत्त होकर श्रौत पथका परित्याग कर तर्कपथका आश्रय लेकर आम्नाय आलोचना करने जाकर अपनी अपनी चेष्टा प्रदर्शन करते हुए विभिन्न मतोंको उत्पन्न किया है। उन सभी मतोंको श्रौत पथ कहकर ग्रहण करने जाकर कोई-कोई विवर्त्तको आश्रय करते हैं। श्रीव्यासजी द्वारा कहे गये पथका सौंदर्य एवं परिपूर्णता दिखलानेके लिए श्रीगौरसुन्दरने महाजनोंके अनुसरणका जो पथ जगत्को बतलाया है, वही गौड़ीय वैष्णवोंके सभी साध्य एवं साधनका एकमात्र आधार है।

श्रीगौरांग महाप्रभुके आश्रित व्यक्तियोंकी सेवा-प्रणालीमें जिस प्रकारसे साध्य एवं साधन का तत्त्व देखा जाता है, उसमें कालके प्रभाव से तार्किक आस्तिकमन्य व्यक्तिके संगके कारण सेवामयी प्रवृत्तिका परिवर्त्तन होकर अभक्तिपूर्ण चेष्टाका उदय हो रहा है। श्रीकृष्ण

ब्रह्मा, नारद एवं व्यासके पथने परवर्त्तीकालमें भागवत एवं पंचरात्र नामके दो सात्वत शास्त्रों के अवलम्बनसे जगत्में प्रसिद्धि प्राप्त की है। निरस्तकुहक (कपटता दूरीकृत) वास्तव सत्य आज स्थूल-सूक्ष्म आवरणकी अस्थिरताके कारण इस मायिक प्रपञ्चमें नाना रूप धारण कर आम्नाय-पथको विपन्न करनेका प्रयासी है। अनुसरणके पथके बदलेमें औपाधिक ज्ञान से विचलित होकर आज अनुसरण-पथ अनुकरण पथ हो चला है।

अतएव भगवद्विमुख आम्नाय-विरोधी व्यक्तियोंके कल्याणके लिए श्रीगौरांग महाप्रभुने श्रीमद्भागवतके श्रवण, पठन एवं मनन की बात कही है। ऐसा करने पर भक्ति की प्राप्ति होगी एवं अनायास ही भव-बन्धनसे मुक्ति हो जायगी। श्रीमद्भागवत एकमात्र अमल पुराण एवं वैष्णवोंका परम प्रिय है। इसमें परमहंस जनोंका अमल परम ज्ञान एवं ज्ञान,वैराग्य,भक्तिके साथ नैष्कर्म्यका दर्शन है।

इस प्रपंचसे जीवनमुक्त व्यक्ति भक्तिका अवलम्बन कर साध्य प्राप्त करेंगे एवं साधन करने वाले व्यक्तियोंका मंगल करनेके लिए स्वयं एवं दूसरोंकी सहायतासे विशेष यत्न कर श्रीगौरसुन्दरकी औदार्य-लीला प्रकट करेंगे। वास्तवमें आम्नाय शास्त्र तीन प्रकारके विषय विभागों द्वारा सुने, पढ़े एवं विचार किये जाते हैं। स्वरूपमें स्थित परेशानुभूति भगवान्के साथ भक्तका सम्बन्ध स्थापन कराती है। सम्बन्ध स्थापन हो जानेपर साध्य-तत्वमें प्रवेश हो जाता है एवं साध्य या प्रयोजन पानेके लिए अभिधेय रूप भक्तिका अनुष्ठान होता है।

साधन-अभिधेय एवं साध्य अभिधेय प्रापंचिक-दृष्टिसे समान जान पड़ने पर भी उनमें नित्य परस्पर विशेषता वर्त्तमान है। साधनाभिधेय परिपक्व अवस्थामें भावोन्मुखी वृत्तिके रूपमें प्रकाशित होता है। एवं पश्चात् प्रेमभक्तिस्वरूपिणी वृत्तिमें उन्नतोज्ज्वल रमके विकसित किरणों द्वारा साध्य भाव भक्तिका स्वरूप प्रकाश करता है। प्रयोजन तत्वविचार से मुक्ति लक्षणमें विष्णुके पादपद्म प्राप्तिरूप प्रेम भक्तिका ही उल्लेख देखा जाता है।

प्रकृतिवादी या मायावादी प्रापंचिक दर्शन कर अनित्य उपाधिमें अहं-ज्ञान स्थापन कर साधन-राज्यमें भी स्थूल-सूक्ष्म अनात्म अनुभूतिपूर्ण चेष्टा को ही मुख्य-साधन मानकर साध्य अपवर्गका विचार करने जाकर जड़विशेषताको केवल स्तब्ध मात्र करते हैं। किन्तु यथार्थ रूपमें ऐसी चेष्टा औपाधिक खण्ड ज्ञानसे उत्पन्न है एवं साध्य शब्द वाच्य होनेमें पूर्णतया असमर्थ है। पाँच प्रकारके मायावादियोंकी मुक्तिका झलक त्रिपुटी विनाश के पहले अनुभव किए जानेके कारण स्वरूप निर्देश करनेमें विवर्त्तवाद उपस्थित होता है, जो चिच्छक्ति परिणामवादकी सत्यताके बारेमें केवल तर्क उपस्थित करता है। तब जीवके अणुत्वका अभिज्ञान विलुप्त होकर महत्तत्व आदि प्रापंचिक विचार प्रबल होता है।

श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीपाद श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रीकृष्णचैतन्यदेव की वाणीमें वर्त्तमान भावोंका प्रकाश किया

है। उन्होंने 'प्रमेयरत्नावली' ग्रन्थमें श्रीमन्मध्वाचार्य मतका, जिसे श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवने अनुमोदन किया है, उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है—

मध्वाचार्यजीका कहना है कि (१) विष्णु ही परतम वस्तु हैं, (२) विष्णु ही समस्त वेदों द्वारा जानने योग्य हैं, (३) विश्व सत्य है (४) जीव विष्णुसे भिन्न हैं, (५) जीव विष्णुसे भिन्न हैं, (५) जीव-समूह श्रीहरिके नित्य सेवक हैं, (६) जीवोंमें बद्ध एवं मुक्त भेदसे तारतम्य वर्त्तमान है, (७) विष्णुके पादपद्म-लाभ ही जीवोंकी मुक्ति है, (८) विष्णु का अप्राकृत भजन ही जीवोंकी मुक्तिका कारण है एवं (९) प्रत्यक्ष, अनुमान एवं श्रुति ही प्रमाण है।

श्रीमध्वाचार्यके मतानुसार भगवान् श्रीहरि ही परतत्त्व हैं, जगत् सत्य होनेपर भी भगवान्‌से तत्त्वतः भिन्न है, जीवकी संख्या अनन्त है एवं सभी ही श्रीहरिके नित्य सेवक हैं। साधन भेदसे फलमें भी भेद होनेके कारण ही उनमें परस्पर ऊँच-नीच भावकी प्राप्ति होती है, कृष्णकी सेवाको भूल जानेके कारण अविद्याद्वारा प्राप्त विरूपताका परित्याग कर शुद्ध चित्स्वरूपमें अवस्थान कर भगवत्सेवानन्द की अनुभूति ही मुक्ति है। अन्याभिलाष, ज्ञान, कर्म आदि मल द्वारा अनावृता निर्मला शुद्धा भक्ति ही इस मुक्तिको पानेका साधन है। प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द—यही तीन प्रमाण हैं एवं स्वयं भगवान् श्रीहरि ही समस्त श्रुतियोंद्वारा प्रतिपाद्य परम पुरुष हैं।

श्रीगौरसुन्दरने तत्त्ववादी शाखाके एक दण्डियोंके साथ विचार कर उनके विचारकी असम्पूर्णता दिखलाई थी। दक्षिण भारत भ्रमण करते समय श्रीरामानुजाचार्यद्वारा सेवित मूलकेन्द्र श्रीरङ्गक्षेत्रमें जाकर विशिष्टाद्वैतवादमें सम्पूर्णता लानेके लिए श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने बहुतसी उपयुक्त बातें कहीं थीं एवं विशेषकर गौडीय वैष्णवोंके साधनकी परिपक्वताके लिए ऐसा किया था। श्री नियमानन्द मुनिके 'परिजात', 'दशश्लोकी' आदि ग्रंथोंमें जो सभी अभाव उनके अनुगत सम्प्रदायमें कृष्णभजनके लिए विघ्न माने जाते थे, उन सभी अभावोंको काश्मीर देशीय केशवाचार्यके साथ विचारकालमें श्रीकृष्णचैतन्यदेवने परिपूरण किया था। तीसरे विष्णुस्वामी सम्प्रदायके शिष्य-वंश-परम्परामें उदित श्रीवल्लभाचार्य रचित 'सुबोधिनी' नामक श्री भागवत-टीकामें जो कुछ अभाव रह गये थे, उनका भी उन्होंने परिपूरण किया था। ये सभी बातें श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रंथमें वर्णित हैं।

श्री, ब्रह्मा, रुद्र, सनक द्वारा प्रवर्त्तित चार सम्प्रदायोंकी बात वेद, पुराण, महाभारत आदि ग्रंथोंमें वर्णित है। महाभारतादि इतिहास-ग्रंथसे संकलित इतिहास इस विषयमें प्रमाण रूपसे वर्त्तमान है।

ब्रह्माजीके सात विभिन्न जन्मोंमें यह वास्तव-सत्य चारबार प्रकाशित हुआ था। कालप्रभावसे वह सत्य बहुत कुछ लुप्त होकर कलियुगमें नाना प्रकारके तर्क उपस्थित हुए

है । (१) ब्रह्माके पहले मानस-जन्ममें श्रीनारायणसे फेणपगण, उनके निकटसे वैखानसगण एवं उनके निकटसे चन्द्रने सबसे पहले सात्वत सत्य प्राप्त किया। (२) ब्रह्माके दूसरे चाक्षुष जन्ममें श्रीनारायणकी कृपासे ब्रह्मा एवं रुद्र, एवं रुद्रसे वालिखिल्यगण उस सत्यको प्राप्त हुए। (३) ब्रह्माके तीसरे वाचिक जन्ममें श्रीनारायणसे सुपर्ण (गरुड़) ने ऋक् वेदका मूल-मंत्र प्राप्त किया। उस समय वायुसे विघशासीगण एवं उनके निकटसे महोदधि (रत्नाकर) ने ऐकान्तिक-धर्म विषयमें अभिज्ञता प्राप्त की थी। (४) ब्रह्माके चौथे श्रौत जन्ममें आरण्यकके साथ वेद शास्त्रमें सात्वत-धर्म प्रचारित हुआ था। उस समय ब्रह्मासे स्वारोचिष मनु, उनसे उनके पुत्र शंखपद एवं उनसे सुवर्णाभने सात्वत धर्मकी शिक्षा ग्रहण की। ब्रह्माके पूर्वोक्त मानस, चाक्षुष, वाक्यज एवं श्रवणज—इन चार प्रकारके आविर्भावोंमें सत्ययुगका धर्म प्रचारित हुआ था।

उस समय त्रेतायुगकी तरह वर्णाश्रम-धर्म एवं वैदिक कर्मकाण्डका आरम्भ नहीं हुआ था। फेणप, वैखानस, सोम, रुद्र, वालिखिल्य, सुपर्ण (गरुड़), वायु, समुद्र, स्वारोचिष मनु, शंखपद एवं सुवर्णाभ आदि प्राग्बन्ध (सत्य) युगके हरिजनोंमें सभी ही एकायन-शाखी थे। उस समय वैदिक शाखाका कोई विभाग न होनेके कारण ही वैदिक ऋषि लोग 'एकायन-शाखी' कहलाते थे। पहले कहे गये फेणप, वैखानस, वालिखिल्य एवं परवर्त्तीकालमें औदुम्बरगण एवं चारों सम्प्रदायोंके अनुसरणमें, वर्णाश्रम धर्म प्रतिष्ठित होनेके समयमें भी वानप्रस्थके शाखा-विशेषमें थे। (५) त्रेतायुगमें ब्रह्माके पाँचवें नासत्य जन्ममें श्रीनारायणसे सनत्कुमार ऐकान्तिक धर्ममें प्रविष्ट हुए। सनत्कुमारसे वीरण, वीरणसे रैभ्य, रैभ्यने कुक्षिसे इस धर्मकी शिक्षा प्राप्त की। (६) उस समय ब्रह्माके छठवें अण्डज जन्ममें ब्रह्मासे बर्हिषद् एवं उनके अग्रज अनिरुद्ध आदि ऐकान्तिक धर्ममें प्रविष्ट हुए। (७) ब्रह्माके सातवें पद्म जन्ममें ही श्रीनारायणसे ब्रह्मा, ब्रह्मासे दक्ष, आदित्य, विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु आदि वैष्णवोंने भागवत-धर्मने अवस्थित होकर प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

श्रीसम्प्रदाय रत्नाकरसे उत्पन्न हुआ है। रत्नाकर प्राचीन विघशासीगणोंसे एवं विघशासीगण वायुसे ब्रह्माके तीसरे वाक्यज जन्ममें प्रकटित हुए।

ब्रह्माके चाक्षुष जन्ममें श्रीब्रह्म सम्प्रदाय एवं श्रीरुद्र सम्प्रदायने श्रीनारायणसे कृपा प्राप्त की। उनके अवस्तन वालिखिल्योंने ही ब्रह्म एवं रुद्र सम्प्रदायका संरक्षण किया। सनत्कुमारने ब्रह्माके नासत्य पाँचवें जन्ममें श्रीनारायणसे त्रेता युगके प्रारम्भमें ऐकान्तिक धर्म प्राप्त किया।

कालके प्रभावसे चौदह भुवनोंके पति श्रीगौरसुन्दर द्वारा प्रचारित सम्बन्ध, अभिधेय एवं प्रयोजनात्मक यथार्थ वेदसिद्धान्तके प्रतिकूलमें जो चौदह प्रकारके प्रबल मतवाद कलिकालमें प्रचारित हुए थे, उनको बात श्रीसायन-माधवने 'सर्वदर्शन-संग्रहमें' संग्रह की

है। वह इस प्रकार है—

(१) वेदविद्वेषी, अन्याभिलाषी, आध्यात्मिक गुणोपासक नास्तिक चार्वाक-सम्प्रदाय।

(२) क्षणिकवादी गुणोपासक नास्तिक तार्किक बौद्ध-सम्प्रदाय।

(३) स्याद्वादी गुणोपासक तार्किक जैन आर्हत-सम्प्रदाय।

(४) निरीश्वर निर्गुणात्मवादी तार्किक सांख्यवादी कापिल सम्प्रदाय।

(५) सेश्वर निर्गुणात्मवादी तार्किक पातंजल-सम्प्रदाय।

(६) चिज्जड़-समन्वयवादी श्रौतब्रह्म केवलाद्वैत-विचारपर (हरि-विमुख) शांकर सम्प्रदाय।

(७) वाक्यार्थवादी श्रौतब्रह्म सगुणोपासक मीमांसक-सम्प्रदाय।

(८) उत्पत्ति साधनादृष्टवादी शब्दप्रमाणान्तरांगीकारी सगुणोपासक नैयायिक-सम्प्रदाय।

(९) उत्पत्ति साधनादृष्टवादी शब्दप्रमाणान्तरानंगीकारी सगुणोपासक वैशेषिक-सम्प्रदाय।

(१०) पदार्थवेदी श्रौतब्रह्म सगुणोपासक वैयाकरण सम्प्रदाय।

(११) निरस्ततर्क भोगसाधनादृष्टवादी जीवन्मुक्त विचारपर सगुणोपासक शैव रसेश्वर सम्प्रदाय।

(१२) भोगसाधनादृष्टवादी विदेहमुक्तिवादी आत्म्यैकवादी सगुणोपासक प्रत्यभिज्ञ सम्प्रदाय।

(१३) भोगसाधनादृष्टवादी आत्मभेदवादी विदेहमुक्तिवादी कर्मनिरपेक्ष ईश्वरवादी सगुणोपासक नकुलीश पाशुपत शैव-सम्प्रदाय।

(१४) भोगसाधनादृष्टवादी विदेहमुक्तिवादी आत्मभेदवादी कर्मसापेक्ष ईश्वरवादी सगुणोपासक शैव-सम्प्रदाय।

श्रीचैतन्यलीलाके लेखक परमहंस-लीला अभिनयकारी श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभुने "नानामत-ग्राहग्रस्तान् दाक्षिणात्यजनद्विपान्। कृपारिणा विमुच्यैतान् गौरश्चक्रे च वैष्णवान्॥"—श्लोक द्वारा आध्यक्षिक जड़ तार्किक व्यक्तियोंको श्रीव्यासानुगत्य ग्रहण करनेका परामर्श दिया है। त्रिदण्डिपाद श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामी आश्रमके वेषमें पारमहंस्य धर्म ग्रहण करनेके कारण दैव-वर्णाश्रमी-जगतके महोपदेशक हुए हैं। उनकी विजय-वैजयन्ती वहन करनेवाले श्रीचैतन्य महाप्रभुके आश्रित प्रचारक व्यक्तियोंको 'श्रीरूपानुग' के रूपमें जाननेमें किसीकी भी भूल धारणा न हो, यही मेरी सकातर प्रार्थना है। स्थूल प्रापंचिक जड़ धारणाके वशीभूत होकर कोई भी व्यक्ति परमहंसानुगत वैष्णवदासानुदासके शास्त्रीय अप्राकृत क्रिया-कलापके सत्य दर्शनमें भूल न कर बैठें।

यह सब कुछ कहनेका तात्पर्य यही है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रकाशित साधन तत्व अन्याभिलाष, कर्म एवं ज्ञानसे अतीत है। किन्तु प्रायः अधिकांश सम्प्रदायोंमें आजकल इन सभी

को साधन समझकर बहुत आदर किया जाता है। अन्याभिलाषीका इस जागतिक फललाभ, कर्मीका पारलौकिक नश्वर फललाभ, निर्भेद ब्रह्मानुसन्धानकारीका ज्ञान, ज्ञेय एवं ज्ञाताका त्रिपुटीके नाशके लिए स्वरूप-निर्वाण-चेष्टा आदि साध्यवस्तुओंकी भगवत्प्रेमके साथ तुलना नहीं हो सकती। भगवत्प्रेमको जो व्यक्ति साध्यवस्तुके रूपमें नित्यकाल दर्शन करनेके बदलेमें परिवर्त्तनशील समझते हैं, उनका साध्य वस्तु-विचार प्रापंचिक या औपाधिक स्थूल-सूक्ष्मगत अज्ञानका ही दूसरा रूप है। इन सभी साध्य-साधन विचारकी बातोंको श्रीचैतन्य लीलाके वर्णनकारी परमहंसकुलके पूर्वगुरु श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने अपनी उपास्यवस्तु श्रीचैतन्यचरितामृतलीला-विग्रहमें सम्यक् प्रकारसे लिपिबद्ध कर रखा है।

साध्यके उद्देश्यसे साधककी चेष्टाका नाम ही 'साधन' है। साधकके स्वरूप ज्ञान के भीतर वर्त्तमान प्रपंच भी पंचकोष द्वारा आवृत है। पंचकोष इस प्रकारसे हैं— (१) अन्नमय कोष, (२) प्राणमय कोष, (३) मनोमय कोष, (४) विज्ञानमय कोष एवं (५) आनन्दमय कोष। इसलिए इन पांचों आवरणों से जब तक मुक्त न हुआ जाय, तब तक साध्य-भूमिका का परिचय प्राप्त नहीं होता। साध्य-वस्तुको प्रपंचके अन्तर्गत करनेकी भ्रान्ति उपस्थित होनेपर साध्य अभिधेयके प्रति अविचारपूर्ण चेष्टा देखी जाती है। इसलिए साधनमें लगे हुए भक्तकी अनर्थ-निवृत्तिकी चेष्टा साधारण व्यक्तियोंकी दृष्टिमें कर्मकाण्ड जैसे प्रतीत होनेपर भी साधनभक्ति केवलमात्र औपाधिक सम्बन्धयुक्त मनोनिग्रहरूपी क्रियामात्र नहीं है। वह निरुपाधिका सेवा-प्रवृत्ति स्वरूपा है एवं उसके फलसे गौणरूपसे द्वितीयाभिनिवेशसे उत्पन्न अतद्वस्तुके संसर्गसे रहित मनोनिग्रहरूपा है।

प्रपंचमें उदित सभी आचार्योंने ही भगवद्वस्तुको 'सम्बन्ध' भगवत्सेवा को 'अभिधेय' एवं भगवत्प्रीतिको ही 'फल' रूपसे वर्णन किया है। तब उनके अधस्तन (परम्परागत परवर्ती) व्यक्तियों द्वारा उन सभी बातोंमें अन्याभिलाषमिश्रा, कर्ममिश्रा एवं ज्ञानमिश्रा सेवाको साधनात्मक अभिधेय रूपसे ग्रहण किये जानेके कारण फलकालमें नित्यभक्तिकी स्थिति भूल जानेकी अवस्था उपस्थित हुई है। यथार्थ रूपमें आत्माकी निर्मला वृत्ति 'भक्ति' आच्छादित होनेके कारण श्रीव्यासदेवके अपने गुरुके उपदेशके साथ वह भिन्न हो पड़ती है। इसलिए श्रीमद्भागवतमें श्रीव्यासदेवद्वारा वास्तव-वस्तुकी निर्मल दर्शनकी बात कही गई है—

भक्तियोगेन मनसि सम्यक्प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायाञ्च तदपाश्रयाम्॥
ययासम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतञ्चाभिपद्यते॥

अर्थात् भक्तियोगमें प्रभावसे शुद्ध हुआ मन जब सम्पूर्णरूपसे स्थिर हुआ, तब श्रीव्यासदेवजीने कान्ति, अंश एवं स्वरूपशक्ति

से युक्त श्रीकृष्णको एवं उनके पीछेकी ओर गर्हित रूपमें अवस्थित मायाको देखा। उसी मायाके द्वारा जीवका स्वरूप आवृत एवं विक्षिप्त होनेपर जीव सत्व, रजः एवं तम—इन तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक अर्थात् सृष्टि, स्थिति एवं लय (ध्वंस) के अन्तर्गत प्राकृत कहकर अभिमान करता है। यह त्रिगुणजात प्राकृत अभिमानके कारण वह अनर्थग्रस्त होता है।

अनर्थोपशमं साक्षात् भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परम पुरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसां शोकमोहभयापहा॥

श्रीवेदव्यासजीने यह दर्शन किया कि इन्द्रियज्ञानातीत विष्णुके प्रति अहैतुकी भक्ति का अनुष्ठान करनेपर संसार-भोगकी निवृत्ति होती है। यह सब कुछ देखकर उन सर्वज्ञ ऋषिने इस विषयमें अनभिज्ञ व्यक्तियोंके मंगल के लिए श्रीमद्भागवत नामक पारमहंसी संहिताकी रचना की। इस पारमहंसी-संहिता श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेके साथ ही साथ परमपुरुष पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति भक्तिका उदय होता है।

श्रीगौरसुन्दरके साध्य-साधन-विचारकी प्रणालीमें भी भागवतका यही परम-सत्य प्राप्त होता है। इसलिए हमारे एक पूर्वाचार्यने श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुसरणमें कहा है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेन या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

अर्थात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनके वैभव स्वरूप श्रीधाम वृन्दावन ही परम आराध्य वस्तु है। व्रजवधूओंने जिस प्रकार कृष्णकी उपासना की थी, वही सर्वश्रेष्ठ उपासना है। श्रीमद्भागवत ग्रंथ ही निर्मल शब्द प्रमाण है एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है। यही सिद्धान्त हमारा परम आदरणीय है, अन्य मत नहीं।

कृष्णप्रेम प्राप्त करने योग्य सभी वस्तुओं की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ है। उसे प्राप्त करना हो, तो श्रवण-कीर्तन-परायण सेवोन्मुख इन्द्रियज ज्ञान ही एकमात्र अवलम्बन है। यही इन्द्रियज ज्ञान ही हमारे जन्मसे लेकर मरण तकका सहाय है। इस इन्द्रिय ज्ञानकी सहायतासे हम भगवानकी अचिच्छक्तिद्वारा परिणत जगतमें विचरण करनेकी योग्यता प्राप्त करते हैं। यह अचिच्छक्ति-परिणाम ही प्रतिकूल रूपसे हमारे अभिनिवेश को बढ़ाता है एवं क्रमशः अचिच्छक्ति परिणत वस्तुको छोड़कर और किसी वस्तुका सन्धान जान नहीं पाते। किन्तु औदार्य-लीलामय विग्रह श्रीमन् चैतन्यमहाप्रभुने यथार्थ रूपमें हमारे कल्याणके लिए ही इस असीम, परिच्छिन्न, कालद्वारा परिवर्तनशील संसारमें तापत्रयकी सृष्टि कर स्वयं उस तापत्रयके उन्मीलनकारी श्रीव्यासदेव प्रकटित श्रीमद्भागवत-गानकी व्यवस्था की है। अपने पार्षद शिक्षक सम्प्रदाय के अभाव आदि पूरण करनेके लिए स्वयं आचार्यके वेषमें प्रकट होकर अपनी भजनमुद्राका उदारतासे वितरण किया है। उसमें हम देख पाते हैं कि हजारों भक्तिके

अंगोंके अन्तर्गत श्रील रूप गोस्वामीपाद लिखित चौसठ प्रकारके साधनभक्तिके अंगों एवं उनमेंसे नवधा भक्तिकी ही प्रधानता वर्त्तमान है। उसमें भी पाँच प्रकारकी सेवा ही अधिकतर फलदायी है, उसमें भी श्रीनाम-संकीर्त्तन ही एकमात्र अपरिहार्य सर्वश्रेष्ठ भक्तिका अंग है। दूसरे प्रकारके भक्ति-अंग साधन करना हो, तो भी श्रीनामकीर्त्तनकी ही सबसे अधिक आवश्यकता है। श्रीभगवद्वाणीमें जिस श्रीनामकी सेवा रूप कीर्त्तन प्रचारित होता है, वह श्रवण द्वारा ही कानोंमें प्रवेश कर श्रवणकीर्त्तनादिके माध्यमसे श्रीरूप-दर्शन, गुणग्रहण, परिकर-वैशिष्ट्यका अनुभव एवं लीलामें स्थिति रूप नाना वैचित्र्यमय नित्यसेवा कार्यमें हमें अवस्थित कराता है। वहाँ हमारे वर्त्तमान नश्वर अस्थि, मांस, मज्जा एवं उनसे युक्त द्रव्यसमूह साथमें नहीं जाते। उस समय हम नश्वर नाम, रूप, गुण और क्रिया को भूलकर प्रकृतिके राज्यका अतिक्रमण कर वैकुण्ठ-गोलोकादि प्रदेशमें अवस्थान करते हैं। इस सर्वार्थ सिद्धिको प्राप्त करनेका एकमात्र साधन ही है वैकुण्ठ नाम-संकीर्त्तन। वैकुण्ठ श्रीनाम मायिक नामके साथ समान दीखने पर भी उनमें परस्पर आकाश-पातालका भेद है।

प्रकृतिके अन्तर्गत वस्तु या भावका परिचय प्रदानकारी नाम या संज्ञा एवं वैकुण्ठ निर्देशक श्रीनाम-परस्पर शक्तिगत सामर्थ्यमें पृथक् हैं। वैकुण्ठ श्रीनाम श्रीनामीके साथ अभिन्न हैं, किन्तु मायिक नामसमूह चक्षु आदि विभिन्न इन्द्रिय-ग्राह्य भावद्वारा समर्थनयोग्य वस्तुओंसे भिन्न हैं। वैकुण्ठ श्रीनाम नित्य, शुद्ध, पूर्ण, मुक्त, सच्चिदानन्द रसविग्रह एवं चिन्तामणि है एवं मायिक परिभाषाएँ एवं नाम अनित्य, अपूर्ण, बद्ध, परिच्छिन्न, अशुद्ध एवं खण्डित है। इसलिए यदि कोई वैकुण्ठ, श्रीनामको मायिक खण्डित नश्वर वस्तुका निर्देशक नाममात्र समझते हैं। तो ऐसी धारणासे श्रीनाम भजनमें बाधा उपस्थित होगी। इसे ही श्रीचैतन्य महाप्रभुने नामापराध या वैष्णवापराध कहा है। जिस प्रकार अप्राप्त ज्ञान शिशु जानकार अभिभावक के हितोपदेश वाक्यकी अवहेलना कर प्रचुर कष्ट पाता है, उसी प्रकार भक्तिपथमें विचरण करनेवाले व्यक्ति यदि श्रीचैतन्य महाप्रभुके वाक्यके प्रति अनादर कर दूसरे द्वियाभिनिवेश युक्त व्यक्तिको आचार्य समझकर अनुगमन करें, तो उनके नित्य मंगलके पथमें काँटे ही वे बोयेंगे।

श्रीनाम भजनकालमें जो सभी असुविधाएँ होती हैं, उनमें सेव्यके प्रति सेवक की विपरीत बुद्धि नामकी भोगकी प्यास एवं मुक्तिकी प्यास प्रधान बाधा है। अतएव श्रीगौरसुन्दर एवं उनके अनुगत जनोंका प्रपंच में औदार्य लीलाभिनय ही सब प्रकारसे हमारे लिए विचार करने योग्य है एवं महाजन पथ ही सर्वथा अनुसरणीय है। श्रीमद्भागवतका यह श्लोक विचारणीय है—

एतां समास्थाय परात्मनिष्ठा-
मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं
तमो मुकुन्दांघ्रि निषेवयैव॥

अर्थात् अवन्ती देशके भिक्षुक ब्राह्मणने

कहा—मैं प्राचीन महर्षियों द्वारा उपासित इस परात्मनिष्ठा रूप भिक्षुकाश्रमका आश्रय कर केवल कृष्णपादपद्मकी सेवाद्वारा ही कठिनतासे लंघनीय संसाररूपी इस अन्धकारसे उत्तीर्ण हो जाऊँगा। इसको छोड़कर दूसरे प्रकारके साधनोंकी चेष्टा करनेपर हमारा समय वृथा नष्ट होगा।

हम त्रिदण्डिपाद श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीके इस श्लोक का अवलम्बन कर कीर्त्तन-पथमें अग्रसर होंगे—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य
कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि।
हे साधवः सकलमेव विहाय दूरात्
चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्॥

अर्थात हे सज्जनों! मैं दांतोंमें तृण रखकर आप लोगोंके पादपद्मोंमें गिरकर दीनताके साथ यही प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग सभी जागतिक धर्मोंका परित्याग कर श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें अनुराग बढ़ायें।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(रागात्मिका एवं रागानुगा भक्ति)

१–रागात्मिका भक्ति किसे कहते हैं?

"विषयी व्यक्तियोंके स्वाभाविक विषय-संसर्गकी अधिकताद्वारा विशेषप्रेम रूप 'राग' होता है। सौंदर्यादि दर्शन कर आँखें जिस प्रकार अधीर हो जाती हैं, उसी प्रकार विषय में 'रंजकता' होती है एवं चित्तमें राग होता है। जब श्रीकृष्ण ही उस रागके एकमात्र विषय होते हैं, तब उसे 'राग भक्ति' कहा जाता है। श्रील रूप गोस्वामीपादने कहा है कि इष्टविषयमें स्वाभाविक परमाविष्टताको ही 'राग' कहा जा सकता है। कृष्णभक्ति जब वैसी रागमयी हो, तब उस भक्तिको 'रागात्मिका भक्ति' कहते हैं। थोड़े शब्दोंमें कहा जाय, तो कृष्णके प्रति प्रेममयी तृष्णाको ही रागात्मिका भक्ति कहा जाता है। × × × कृष्ण-लीलाके प्रति लोभ ही रागात्मिका भक्तिमें कार्य करता है।"

—जै० ध० २१वाँ अ०

२–रागात्मिका भक्तिकी स्थिति कहाँ है?

"व्रजवासी भक्तोंकी जो रागस्वरूपा

भक्ति है, वही मुख्य अर्थात् वैसी भक्ति और कहीं भी नहीं है। व्रजवासियोंके अनुगत होकर जो भक्ति की जाय, उसीका नाम रागानुगा भक्ति है।

इष्टवस्तुमें स्वाभाविकी परमाविष्टतामयी जो सेवन प्रवृत्ति है, उसका नाम 'राग' है। कृष्णभक्ति तन्मयी (वैसी रागमयी) होनेपर 'रागात्मिका' कही जाती है। व्रजवासियोंमें अभिव्यक्त (स्वाभाविक स्पष्ट) रूपसे रागात्मिका भक्ति विराजमान है। उस भक्तिकी अनुगता जो भक्ति है, वही रागानुगा भक्ति है।"

—अ० प्र० भा० म० २२।१४५, १४६-१५०

३-रागमयी भक्तिके अधिकारी कौन हैं?

"वैधी श्रद्धा जिस प्रकार वैधी भक्तिके प्रति अधिकार उत्पन्न करती है, उसी प्रकार लोभमयी श्रद्धा रागात्मिका भक्तिके प्रति अधिकार उत्पन्न करती है। व्रजवासियोंमें अपने अपने रसके भेदसे रागात्मिका निष्ठा ही प्रबला है। व्रजवासियोंका श्रीकृष्णके प्रति जो भाव है, उसे देखकर जो व्यक्ति उस भावको पानेके लिए लोभ करें, वे ही रागानुगा भक्ति के अधिकारी हैं।"

जै० ध० २१वाँ अ०

४-साधन कितने प्रकारके हैं एवं उनकी क्या प्रणाली है?

"श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदन-इस नवविधा साधन भक्तिकी बात श्रीमद्भागवतमें कही गई है। इन नौ प्रकार के अंगोंको अंग-प्रत्यंग लेकर श्रीलरूप गोस्वामीपादने चौसठ प्रकार कर वर्णन किया है। इसमें एक विशेष बात यह है कि साधन भक्ति वैधी एवं रागानुगा भेदसे दो प्रकार है। उसमें वैधी भक्ति नौ प्रकार की है। रागानुगा साधन भक्ति (प्रधान रूपमें) केवल व्रजजनोंके अनुगत होकर उनकी तरह मानसमें श्रीकृष्णसेवा है।"

—जै० ध० ४था अ०

५-आत्माकी स्वाभाविक वृत्ति क्या है?

"लोहेका आकर्षण जिस प्रकार चुम्बककी प्रवृत्ति है, तरलता जिस प्रकार जल का गुण है, दहन, जिस प्रकार आगकी शक्ति है संकल्प जिस प्रकार मनका धर्म है, तत्तत्कार्योपयोगिता जिस प्रकार द्रव्योंका स्वभाव है, उसी प्रकार परमेश्वरके प्रति अनुराग ही आत्माकी स्वाभाविकी वृत्ति है। मुक्तावस्थामें जीवकी यही वृत्ति निर्मल एवं पूर्ण रूपसे प्रकाश पाती है। किन्तु बद्धावस्थामें उसकी विकृति हो जाती है।"

—त० सू० १७ वाँ सू०

६-विषयानुराग एवं परानुराग (भगवद् अनुराग) में क्या भेद है?

"शरीरी जीवोंका विषयानुराग ही परानुरागका विकार है। यह वृत्ति निरुपाधिक या शुद्ध होने पर "परानुराग" होती है। किन्तु उपाधि प्राप्त होनेपर उस उपाधिमें वह विकृत रूपसे परिणत होता है।"

त० सू० १७ वाँ सू०

७-उपाधिभेदसे अनुरागका नाम एवं

क्रिया क्या है ?

"अनुराग एक ही वृत्ति है, उपाधि भेद से नामान्तर प्राप्त होता है। अर्थमें अनुराग होनेपर 'लोभ' कहा जा सकता है, स्त्रीके सौन्दर्यमें अनुराग होनेपर 'लम्पटता' कह सकते हैं, दुःखी व्यक्तियोंके प्रति अनुराग होने पर 'दया' कह सकते हैं, भाई-बहिनके प्रति लगाने पर 'स्नेह' होता है, उपकारी पुरुषके प्रति नियुक्त होने पर 'कृतज्ञता' होती है, आनुकूल्य रूप उपाधियुक्त होने पर 'प्रीति' होती है, प्रातिकूल्यरूप उपाधियुक्त होने पर 'द्वेष' होता है। इस प्रकार एक ही वृत्ति बहुतसे वृत्तियोंके रूपसे परिणत होकर प्रकाश पा रही हैं। बहुत्व ही इसकी उपाधि है। मुक्त जीवके साथ यह निरुपाधिक अवस्थामें रहती है। तथापि केवल एक ही अवस्थामें रहे, ऐसी बात नहीं, किन्तु इस निर्मल अनुरागकी अनन्त परिमाणमें उन्नतिकी जा सकती है, इसीमें इसकी श्रेयस्करता है।"

—ह० सु० १७वाँ सूत्र

८–कौनसे व्यक्ति विशुद्ध भजनपरायण हैं ?

"भय, आशा एवं कर्त्तव्यबुद्धि द्वारा जो सभी उपासक ईश्वर भजनमें प्रवृत्त हों, उनका भजन उतना विशुद्ध नहीं है। रागमार्गसे जो व्यक्ति ईश्वर भजनमें प्रवृत्ति हैं, वे ही यथार्थ साधक हैं।"

—चै० शि० १।१

९–रागानुगा भक्तिके अधिकारी कौन हैं?

"जिनकी आत्मामें रागतत्त्वकी उपलब्धि नहीं हुई है एवं जो व्यक्ति शास्त्र-शासन मान कर उपासना करनेकी इच्छा करें, वे वैधी भक्तिके अधिकारी हैं। जो हरिभजनमें शास्त्र-शासनके वशवर्ती होकर भजन करना नहीं चाहते; किन्तु उनकी आत्मामें हरिभजनके लिए स्वाभाविक रागका उदय हुआ है, वे ही रागानुग भजनके अधिकारी हैं।"

—जै० ध ४था अ०

१०–रागानुगा भक्तिका मूल क्या है ?

"रुचिमूला हि रागानुगा भक्तिः।"

"व्रजवासियोंके सेवानुकरणमें रुचि ही रागानुगा भक्तिका मूल है।"

—आ० सू० ११६

११–रागानुग साधकोंका भगवदनुशीलन कितने प्रकारका है एवं उनमें परस्पर भेद क्या क्या है ?

रागानुग साधकोंका भगवदनुशीलन इस प्रकार है—

(१) **चिद्गत अनुशीलन**–(अ) प्रीति एवं (आ) सम्बन्धाभिधेय प्रयोजनकी अनुभूति।

(२) **मनोगत अनुशीलन**–(अ) स्मरण, (आ) धारणा, (इ) ध्यान, (ई) ध्रुवानुस्मृति या निदिध्यासन, (उ) समाधि, (ऊ) सम्बन्ध तत्त्व विचार, (ए) अनुताप, (ऐ) यम एवं (ओ) चित्तशुद्धि।

(३) **देहगत अनुशीलन**– (अ) नियम, (आ) परिचर्या, (इ) भगवद् भागवत आदिका

दर्शन-स्पर्शन, (ई) वन्दन, (ऊ) हृषिकार्पण, (ए) सात्त्विक विकार एवं (ऐ) भगवद्दास्य भाव ।

(४) **वाग्गत अनुशीलन**- (अ) स्तुति, (आ) पाठ, (इ) कीर्त्तन, (ई) अध्यापन, (उ) प्रार्थना एवं (ऊ) प्रचार ।

(५) **सम्बन्धगत अनुशीलन**-(अ) शान्त, (आ) दास्य, (इ) सख्य, (ई) वात्सल्य एवं (उ) कान्त । सम्बन्धगत प्रवृत्ति दो प्रकारकी है—अर्थात् भगवद्गत प्रवृत्ति एवं भगवज्जनगत प्रवृत्ति ।

(६) **समाजगत अनुशीलन**-(अ) मानवों के स्वभाव-अनुसारसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तथा उनका धर्म, पद एवं वार्त्ता-विभाग ।

(आ) मानवोंकी स्थितिके अनुसार सांसारिक अवस्था विभाग—गृहस्थ, ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास ।

(इ) सभा, (ई) साधारण उत्सवसमूह एवं (उ) यज्ञादि कर्म ।

(७) **विषयगत अनुशीलन**—(चक्षुः आदि इन्द्रियोंके विषयीभूत भगवद्भाव विस्तारक निदर्शन (अहर्य्यकाल विज्ञापक घटिका यन्त्रकी तरह)—

(क) चक्षु (आँख) के विषय—श्रीमूर्त्ति, मन्दिर, ग्रंथ, तीर्थ, यात्रा, महोत्सव इत्यादि ।

(ख) कानोंके विषय—ग्रंथ, गीत वक्तृता एवं कथा इत्यादि ।

(ग) नासिकाके विषय—भगवन्निवेदित तुलसी, पुष्प, चन्दन एवं अन्यान्य सुगन्ध द्रव्य ।

(घ) रसना (जिह्वा) के विषय—भगवन्निवेदित सुखाद्य, सुपेय ग्रहण-संकल्प एवं कीर्त्तन ।

(ङ) स्पर्शके विषय—तीर्थवायु, पवित्र जल, वैष्णव शरीर, कृष्णार्पित कोमल शय्या, भगवत्सम्बन्धी संसार-समृद्धिमूलक सती संगिनी-संगादि ।

(च) काल—हरिवासर एवं पर्वदिन इत्यादि ।

(छ) देश—वृन्दावन, नवद्वीप, पुरुषोत्तम एवं नैमिषारण्य इत्यादि ।

१२—रागानुग भक्तकी कृष्णसेवारीति किस प्रकार है ?

"रागात्मिका भक्तिमें जिनका लोभ हो, वे व्रजजनोंके कार्यके अनुसार साधक रूपसे बाहर एवं सिद्धरूपसे अभ्यन्तरमें सेवा करेंगे ।"

—अ० प्र० भा० म० २२।१५४

१३—रागानुग-भजनकारीकी इष्टविषयिणी सेवा, व्यवहार, लीलाचेष्टा, पद्धति एवं भाव किस प्रकारके होंगे ?

"विलापकुसुमांजलिमें जिस प्रकार सेवा की व्यवस्था है, उसी प्रकारसे सेवा करेंगे । 'व्रजविलास' स्तोत्रमें जिस प्रकार व्यवहार वर्णित है, उसी प्रकार परस्पर व्यवहार करें । 'विशाखानन्दादि' स्तोत्रमें जिस प्रकार लीलादि वर्णित हैं, उसी प्रकारकी लीला-चेष्टा अष्टकालीय लीलामें दर्शन करेंगे । 'मनः शिक्षा'

में जो पद्धति दी गई है, उसी पद्धतिके अनुसार चित्तको कृष्णलीलामें मग्न करेंगे एवं 'स्वनियम' में जो भाव दिखलाया गया है, उसी प्रकार नियमकी दृढ़ता करेंगे।"

—जै० ध० २९वाँ अ०

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रीगुरुपादपद्ममें सविनय निवेदन

(तदीय शुभाविर्भाव तिथिके उपलक्षमें)

अब तो दशा सुधारो

गुरुवर केशव ! भारत जन गन अब तो दशा सुधारो।
अन्न स्नेह घृत वस्त्र प्राप्तिको बिलबिलात है भारो ॥
राज्याश्वासन सुनि सुनि निसि दिन आशामें भरमायो।
अधिकारी व्रज मुखको जोहत नित्य विपत्ति समायो ॥
भ्रष्टाचार सरित चहुँ बाढ़ी नहिं उधार हैं पाते।
घूस प्रसार ओ छल-प्रपंच भरि मनुज फिरत मदमाते ॥
सत्य अहिंसा शम दम चर्चा सदाचार मर्यादा धाई।
वर्णधर्म आश्रमकी बातें कब की गई विहाई ॥
न्याय त्यजि अन्याय गहत है वह पुनीतता गई छिपाई।
हड़ताल करि माँग पूर्ति हित नटकट फिरत सदाई।
कृष्ण भजन कीर्त्तन कर साधन शशकश्रृंग सम गये विलाई ॥
वैदेशिकता बढ़ी देश पर विकसित होई उजासी।
भौतिक वैज्ञानिकता फैली श्रद्धा धर्म विनासी ॥
पुण्य पर्व यह कृपादृष्टि करि प्रभुवर आशिष दीजे।
भारत भूमि आर्य संस्कृतिकी ध्वज फहरे यह कीजे ॥

परमाराध्यतम १०८ ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज की शुभाविर्भाव तिथिमें पुष्पांजलि

गुरुवर केशव करुणाधारी ।
निःसहाय औ दीनहीनके तुम ही एक अधारी ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह रत विषय भोग अनुरागी ।
लम्पटता मानस मलीनता कुटिलाई हिय जागी ॥
परनिन्दा परद्रोह विभूषित धर्मकर्म तैं रहत उदासी ।
लज्जा छोरि फिरौं जगतीतल न्याय सुपंथ विनाशी ॥
धरि अनीति दूषण परिपूरित अघ सेवत वरि आई ।
कृष्णचरण रति बिसरि कीर्त्तन नामस्मरणमें अरुचि समाई ॥
यद्यपि साधन सम्बल नाहिन तदापि अनुग्रह आश लगाई ।
सुफल करौं जीवन चरणोंमें पुष्पांजलि ही आज चढ़ाई ॥
परम पवित्र भजनरत वैष्णव हैं जिहि के अधिकारी ।
छरि खरोतिहिको चाहत हौं हठ करि दुःख विदारी ॥

श्रीश्रीगुरु गौराङ्गौ जयतः

परमाराध्यतम श्रीश्रील ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज जी की आविर्भाव-तिथिपर

पुष्पांजलि

सदैवकी भांति फाल्गुन तृतीयाका पावन दिन आज भी आ उपस्थित हुआ है। यह दिन हमें एक ऐसे महान वेद एवं पुराणविद् परमपुरुषके आविर्भावका स्मरण दिलाता है, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण प्राकट्य कालमें भागवत तत्वका भारतके कोने-कोनेमें प्रचार किया। परन्तु उनका प्रचार, केवल प्रचारमात्र नहीं था। उन्होंने भगवद् तत्वको अपने जीवनमें अनुभव किया तथा तदनुकूल आचरण कर बद्धजीवोंके लिए तत्वज्ञानका मार्ग प्रशस्त

किया। उन्होंने स्वयं भगवान् महाप्रभु श्रीश्रीचैतन्यदेवकी इस वाणीको सार्थक किया है कि—

आपनि आचरि तबे करो प्रचार।

वस्तुतः आचरणके साथ साथ जो प्रचार किया जाता है, वह श्रोताके मन पर सीधा प्रभाव डालता है, क्योंकि उसमें आचरण शक्ति का प्रभाव निहित होता है। परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवकी वाणीमें इतना आकर्षण था कि एकबार सम्पर्कमें आनेपर चाहे व्यक्ति कितना ही दुर्विचार-प्रेरित क्यों हो, वह भक्तिमार्गकी ओर उन्मुख हो जाता था। उनके शास्त्रज्ञानके सामक्ष विरोधिता इस प्रकार नष्ट हो जाती थी, जिस प्रकार सूर्य उदय होनेपर अमावस्याकी रात्रिका अंधकार।

हम प्रतिवर्ष इस पावन तिथिपर उनके चरणकमलोंमें पुष्पांजलि समर्पित करते हैं, किन्तु इसे औपचारिकता मात्र ही कहूँगा। सही अर्थोंमें हम पुष्पांजलि तभी समर्पित कर सकेंगे, जब हम उनकी आज्ञाओंका अन्तर्मनसे आचरणकर विश्वके कोने-कोनेमें उनको पहुँचा सकेंगे। परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवका एकमात्र निष्कर्ष यह था कि हम श्रीमन्महाप्रभुकी सेवा तभी कर सकेंगे, जब कि हम उनकी इस वाणीका पालन कर सकेंगे —

पृथ्वी ते आछे जतो नगर आदि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम॥

उन्होंने अपने प्राकट्यकालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी उक्त वाणीका शतप्रतिशत रूपसे पालन किया। उन्होने भारतके कई प्रान्तोंमें मठोंकी स्थापना कर लाखों लोगोंमें श्रीमन् महाप्रभु चैतन्यदेवकी प्रेम एवं भक्तिप्रदायिनी शिक्षाओंका प्रचार किया। आज मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि या तो हम सिमटते जा रहे हैं अथवा एकक्षेत्रीय होते जा रहे हैं, जबकि भारतके कई प्रांत ऐसे हैं, जहाँ लोग अन्ध धार्मिक तो हैं, किन्तु उन्हें शुद्ध भगवद् ज्ञानका मार्ग दिखानेवाला कोई मार्गदर्शक नहीं मिला है। लोग अन्धकारमें भटक रहे हैं एवं कितने ही कपटी लोगोंके द्वारा उन्हें पथ-भ्रष्ट किया जा रहा है। ऐसे भ्रष्ट लोग स्वयंको भगवान् सजाकर, अबोध एवं तत्व-पिपासु जनताको धोखा दे रहे हैं। मेरे विचारसे हमें बंग क्षेत्रके साथ-साथ बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश आदि प्रांतोंमें भी घूम-घूमकर प्रचार करना चाहिए, जिससे भारतवर्षमें फिरसे धर्मकी सुसंस्थापना हो सके।

इसे मेरी अस्था कहिए अथवा सत्यता, आज भी हमारे मठोंमें ऐसे विद्वान संन्यासी, वानप्रस्थ तथा ब्रह्मचारी हैं, जो अकेले ही कई प्रान्तोंका दिशा-निदेश कर सकते सकते हैं। परन्तु वे विवश हैं, क्योंकि उनके ऊपर ऐसे दायित्व आ पड़े हैं, जिन्हें दूसरे व्यक्ति सम्भालना नहीं चाहते।

मैंने पिछले कुछ वर्षोंसे ऐसा अनुभव किया है कि हमारी एकता बिखर रही है। इस बिखरावके पीछे कौन-सा विचार अथवा प्रेरणा कार्य कर रही है, यह एकमतसे कहना कुछ कठिन है। फिर भी श्रीमन्महाप्रभुजीकी सेवा तथा परमाराध्यतम श्रीलगुरु महाराजकी

सेवाके लिए हमें सभीको एकजुट होकर लग जाना चाहिए ।

अन्तमें मैं सदैवकी भाँति परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवजीके पादपद्मोंमें यह पुष्पांजलि अर्पित कर यह प्रार्थना करता हूँ कि वे हम सभी को शक्ति प्रदान करें, जिससे हम लोग उनकी आज्ञाओंको अपने जीवनमें उतार सकें तथा सर्वत्र भागवत धर्मका प्रचार कर इस अधार्मिक शासनग्रस्त भारतकी जनतामें शुद्ध भक्ति मार्गको पुनः स्थापित कर, श्रौतवाणीको भविष्यके लिए यथावत् बनाये रखनेमें योगदान कर सकेंगे ।

मैं उपस्थित सभी भागवत जनोंसे क्षमा चाहता हूँ,क्योंकि मेरे उक्त विचारोंमें कहीं भी त्रुटि होना सम्भव है ।

कृपा प्रार्थी :—

सत्यपाल गोयल

एम० ए०, रिसर्च स्कालर

पूरनचन्द गोयल

एम० ए०

भक्तकी दीनता

स्तावकास्तव चतुर्मुखादयो भावकास्तु भगवन् ! भवादयः ।
सेवकाः शतमखादयः सुरा वासुदेव ! यदि के तदा वयम् ? ॥

भक्तवर श्रीधनंजय कहते हैं—हे भगवन् ! ब्रह्मा आदि आपके स्तुति करनेवाले हैं, शङ्कर आदि आपकी चिन्ता करनेवाले है, इन्द्रादि देवता आपके सेवक हैं । अतएव हे वासुदेव ! हम आपकी कौन-सी सेवाके योग्य हो सकते हैं ? अर्थात् किसी योग्य नहीं ।

(पद्यावलीसे संग्रहीत)

—::※::—

परमाराध्य पतितपावन मदीय गुरुदेव ॐ विष्णुपाद परमहँस
परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान
केशव गोस्वामी प्रभुपादकी व्यास पूजापर

पुष्पाञ्जलि

पूज्य भक्ति प्रज्ञान दिव्य केशव मतिधारी ।
हरि रतिधारी-रसिक राधिका चरण विहारी ॥
अमित ज्ञान विज्ञान कला निधि गुण के सागर ।
गौरव महिमावान् महागुरु शुद्ध उजागर ॥
पावन कृष्णा नीज माघकी तिथि सुहाई ।
व्यास रूप गुरुदेव भक्ति प्रज्ञान सुपाई ॥
जनम लीयो रसरीति थापना करन धरा पै ।
जग प्रपंच को ताप तनकहु जिनहिं न व्यापै ॥
सादर सविनय शीश नवाँकरि तिनके पद पर ।
धन्य हमारो जनम चित्त आनद के नद पर ॥
पुष्पांजलि कर-धार चरणमें चित लगि जावै ।
गुरुपद को गुणगान हृदय सों ओकूं भावै ॥
जय जय जय गुरुदेव कृपाके सिंधु मनोहर ।
कृपा करो गुरुदेव दयानिधि दिव्य यशोधर ॥
इन आंखिनको सलिल धार चरणन पै आवै ।
लाज रहै ब्रजराज राधिके विनय सुनावै ॥
हरिजन ओमप्रकाश लिए अभिलाष हृदयमें ।
शरणागत गुरु शरण देउ प्रत्येक समय में ॥
चरणोदक हौं पियत रहौं रतिमें रूचि लैकें ।
रसिक शिरोमणि श्याम सुखद छवि पै मन दैकें ॥

चरणकिङ्कर
कृपाप्रार्थी :-
ओमप्रकाश ब्रजवासी, एम० ए०
साहित्यरत्न

श्रील प्रभुपादजीका विरह

(परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त भाषण)

आज श्रील प्रभुपादजीकी विरह तिथि है। श्रीगुरुपादपद्मके विरह-दिवसमें शिष्यका क्या कर्त्तव्य है, यह स्थिर होना आवश्यक है। साधारण रूपसे विरहमें सान्त्वनाकी आवश्यकता है। विरह व्यथित हृदय सान्त्वना मिलने पर संजीवित होता है। नहीं तो विरह यातना उसे बारम्बार मूर्च्छाकी अवस्थामें खड़ा कर देती है। जो व्यक्ति जितने परिमाणमें श्रीगुरुपादपद्मोंमें आसक्त-चित्त थे, वे उतना ही उनका विरह अनुभव करेंगे।

श्रीगुरुपादपद्मने हमारी दुरवस्था एवं स्वतन्त्रताके प्रति हस्तक्षेप न कर सभीके स्वाभाविक मंगलके उद्देश्यसे शिक्षाभिमानी-की कृपा कर वंचना की है। ऐसा उदाहरण देखकर श्रीगुरुदेवकी अतुलनीय दूरदर्शिताकी बात चिन्ता कर उनके ही श्रीपादपद्मों चिर विकीत हो रहा हूँ। जो व्यक्ति एकान्त रूपसे ही वंचित होनेके इच्छुक हैं, उन्हें वे क्या कर सकते हैं? स्वतन्त्रता पर हस्तक्षेप करनेसे जीवकी सत्तापर कशाघात करना होता है, या भगवान्‌की इच्छाके बिलकुल विरुद्ध है। इसलिए भगवानकी सेवाकी पराकाष्ठा प्रदर्शनकारी श्रीगुरुपादपद्ममें भगवद् इच्छाका विरोध होना असंभव है। तथापि वंचना द्वारा भी अनुगतजनों पर कृपा कर उन्होंने 'कृपा-वारिधि' नामकी सार्थकता सम्पन्न की है। ऐसी वंचनाके गूढ़ रहस्यको कौन अनु-संधान करेगा? पार्थिव वस्तुकी भोग-कामनामें प्रमत्त हमारे हृदयकी गतिको रोध करनेका सर्वोत्तम उपाय है—'वंचयेत् द्रविणादिभिः।' श्रीगुरुदेवके अर्थसे एवं द्रव्यसे हमारी भोग-वासनाको चरितार्थ करनेकी प्रवृत्तिको आज उनकी विरहाग्निमें भस्मीभूत करना ही हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है। श्रील प्रभुपादजी के प्रकटकालमें उन्होंने हमपर प्रचुर द्रविणादि द्वारा कृपा की है। आज उनके अप्रकटमें उसकी प्राप्तिमें बाधा पहुँचनेके कारण विरह-यातना अधिक जान पड़ती है। इस प्रकारके विरहकी अपेक्षा "श्रीगुरुपादपद्म हमें जो शिक्षा प्रदान करते थे, उस शिक्षासे हम वंचित हुए हैं"—ऐसी अभाव-अनुभूति उन्नततर विरह है।

श्रीगुरुदेवने हृदयकी दुर्बलता देखकर प्रचुर प्रतिष्ठादिद्वारा विभूषित कर मुझे सेवामें नियुक्त किया है। प्रतिष्ठासूचक उत्साह-वाणी हमारी मानस-इन्द्रियके लिए तृप्तिकर होनेके कारण दुर्भाग्य क्रमसे श्रीगुरुदेवके निकटसे उनकी ऐसी वाणीकी आकांक्षा कर हमने इन्द्रिय-तर्पण करा लिया है। केवल यही नहीं, मूढ़ मन श्रीगुरुपादपद्मकी उस वंचनामूलक

उत्साहवाणीकी उद्दिष्ट-वस्तु अपनेको समझकर अहंकारके चरममें पहुँचे हैं। ऐसा कर हम श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा "तृणादपि सुनीच" श्लोककी बात भूल गये हैं। श्रीगुरुदेवके अतिमर्त्य मुक्त-स्वरूपमें "जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े, ताहाँ कृष्ण स्फूरे"—वाक्यकी सार्थकता वर्तमान है। "जाहाँ नदी देखे, ताहाँ मानये कालिन्दी"—श्रीगुरुपादपद्मका यही स्वभाव है। इसलिए हमारी तरह अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण पार्थिव जगतके समस्त आवर्जनयुक्त नदी-नाले आदि महाभागवतकी दृष्टिमें परम पवित्र कालिन्दीस्वरूपसे दीखने पर भी हम उसे कालिन्दी नहीं समझ सकते। मेरे हृदयके मैलको मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। जो कोई पर्वत ही गोवर्द्धन नहीं है। दंभरूप अत्युच्च प्रस्तरतुल्य शैलको महाभागवत गोवर्द्धन दर्शन करने पर भी मेरे लिए वह गोवर्द्धन नहीं है। श्रीगुरुपादपद्मने प्रचुर प्रशंसा कर मेरी उन्नति करनेके लिए विशेष चेष्टा की है। हम उनके हृदयकी गूढ़तम अवस्था न समझकर उसीमें मोहित होकर श्रीगुरुदेवके निकट उसका दावा कर रहे हैं। उनकी अनुपस्थिति होनेके कारण वे सभी स्तव-स्तुतिमूलक वाक्य श्रवण कर मन रूप इन्द्रियका तर्पण नहीं हो रहा है ऐसा सोचकर विरह अनुभव कर रहे हैं। किन्तु आज श्रीलप्रभुपादजीके पृथ्वीमण्डल कम्पनकारी कठोर वज्र-गंभीर शिक्षा-वाक्य समूह श्रवण कर मेरे दंभ-पर्वतका विनाश करना ही विरह-दिवस का कर्त्तव्य है।

श्रीलप्रभुपादजीने सिंह-स्वरसे वज्रदण्डसे हृदयको कम्पायमान करनेवाली भाषामें हमें जो सभी शिक्षाएँ दी हैं, उनमेंसे एक प्रधान शिक्षाका आज मेरे हृदयमें उदय हो रहा है। हमारे भविष्यत् दुर्दैवकी बात चिन्ता कर हमारे उद्धारके लिए साधन मार्गकी उन्नतम शिक्षाओंमेंसे एक शिक्षा है—साधु-वैष्णवके संगमें रहकर हरिनाम कीर्त्तनके द्वारा कृष्णका प्रीतिविधान करना। भजन कहनेसे श्रीकृष्ण कीर्त्तन ही एकमात्र भजन है। यही श्रीरूप-रघुनाथकी शिक्षा है। निर्जनरूपसे गोपनमें बैठकर आलस्यको आश्रय देकर इन्द्रिय-तर्पण करना कदापि भजन नहीं है, यही शास्त्रकारोंका मत है। इन्द्रिय-तर्पणपरायण प्रतिष्ठाकामी आलसी व्यक्ति लोग भजन किसे कहते हैं, यह न जान पाकर अन्धेरे कुएं जैसे गृहके कोनेमें बैठकर श्रीहरिनामके बदलेमें श्रील प्रभुपादजीकी भाषामें "रस्सी खींचने" को ही हरिनाम समझकर अधःपतित हो रहे हैं। उनमें कृष्णकी शक्तिकी कमी होनेके कारण-वे सभी आलसी व्यक्ति दुर्बलताके वशीभूत होकर कृष्ण-सेवा तात्पर्यमय श्रीगुरु सेवाको कर्म समझकर श्रील प्रभुपादजीके विरह-दिवसमें उनके हृदयमें शूल विद्ध कर रहे हैं। कर्म एवं भक्ति का तारतम्य वे समझ नहीं सकते। समस्त इन्द्रियों द्वारा की जानेवाली कृष्णसेवा यदि कर्म हो, तो क्या सभी इन्द्रियोंका पक्षाघात या Paralysis होना ही क्या भगवद्भक्ति है? आज श्रीलप्रभुपादजीकी विरह-तिथिमें हृदय-दुर्बलताग्रस्त प्रतिष्ठाकामी जीव गुरु-द्रोहिताकी बात स्मरण कर हृदयमें दुःखित हो रहे हैं। श्रीलप्रभुपादने 'निर्जन' कहनेसे दुर्जन-संग-त्याग एवं सज्जन-संग ग्रहणको ही कहा है, इसको छोड़कर 'निर्जन' शब्दका जो कोई भी अर्थ क्यों न हो, वह शास्त्रविरुद्ध, युक्ति-

विरुद्ध एवं श्रीगुरुपादपद्मके मनोभीष्ट प्रचारके विरुद्ध है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी प्रार्थना यह है कि आप लोग ॐ विष्णुपाद परमहंस स्वामी अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी ठाकुरकी आन्तरिक इच्छाके विपरीत आचरण न कर अनुकूल-रूपसे ही उनके मनोभीष्टमें सहायक होंगे। श्रील प्रभुपादजीने हमारे मंगलके लिए जो मनोभीष्ट उपदेश-कीर्तन की रचना की है, वह आज उनकी विरह-तिथि-वासरमें हमारा एकमात्र आश्रय हो।

श्रील प्रभुपादजी परम उन्नतोज्ज्वल रसमें श्रीश्रीराधा-दास्य प्राप्त करानेके लिए हमारे लिए शिक्षासार स्वरूप वह कीर्तन स्वर्णाक्षरमें संरक्षण कर गये हैं। आज उनके विरह-दिवसमें यही हमारे लिए एकमात्र कीर्तन द्वारा स्मरण करने योग्य है।

उक्त गीतके अन्तमें श्रील प्रभुपादजीने कहा है—"कीर्त्तन प्रभावे स्मरण हइबे से काले भजन निर्जन संभव।" अर्थात् कीर्त्तनके प्रभावसे स्मरण होने पर निर्जन भजन संभव है। इसके द्वारा कोई यह समझ सकता है कि ऐसा कोई समय उपस्थित हो सकता है, जब तथाकथित निर्जन भजन संभवपर हो। किन्तु श्रील प्रभुपादजीका कथन 'सेकाले भजन निर्जन संभव' द्वारा उन्होंने 'वह काल' का निरूपण किया है। 'कीर्त्तन-प्रभावसे, अर्थात् कीर्त्तन प्रभावसे स्मरण होगा एवं निर्जन-भजन भी होगा। 'निर्जन' शब्दका अर्थ पहले ही बतलाया है—दुर्जन-संग त्याग। यथार्थ रूपसे असत्संगका त्याग हरिकीर्त्तनके बिना किसी प्रकारसे भी नहीं हो सकता। असत्संग-त्यागकी एकमात्र प्रणाली है—कीर्त्तन एवं भगवान्‌की लीलादि स्मरणकी भी भी एकमात्र प्रणाली—हरिकीर्त्तन है। इसलिए 'से काले भजन निर्जन संभव' कहनेसे सत्संगमें रहकर हरिकीर्त्तन करना ही निर्जन भजन है, ऐसा अर्थ होता है। गीतके उपक्रम-उपसंहारादि विचार करने पर यही एकमात्र प्रतिपन्न होता है। इस सम्बन्धमें पूर्व पूर्व आचार्योंके उपदेश बतलाकर यह प्रबन्ध समाप्त कह रहा हूँ—

(१) श्रील प्रभुपादजी—(क) निर्जन-भजनकी आड़ लेकर सब समय आलसी जीवन व्यतीत करना, निश्किंचनता की आड़से अनर्थक दरिद्रता उत्पन्न करना एवं हरिकीर्त्तनमें बाधा देना आवश्यक नहीं है। (पत्रावली, २य खण्ड, १०० पृष्ट)

(ख) कीर्त्तन द्वारा ही श्रवण होता है एवं स्मरणका सुयोग उपस्थित होता है। उस समय ही अष्टकालीय-लीला-सेवाका अनुभव हो सकता है।

(२) श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज—मेरे पास बैठकर हरिनाम करो, नकली रूपसे लीला-स्मरणादि करने पर अनर्थ का भूत एवं मायापिशाची तुम्हारे ऊपर और भी अच्छी तरह चढ़ बैठेगी। (गौड़ीय, १४ वर्ष, २१८ पृष्ट)

(३) श्रील ठाकुर भक्तिविनोद—साधु व्यक्तियोंका संग करने पर निःसंगत्वरूप फलोदय होता है।

(४) श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराज—(क) निर्जन भजनका छल कर आलसी मत बनो।

(ख) अन्यमनस्क होकर लाख लाख माला जपनेकी अपेक्षा वैष्णव-सेवाके लिए बगीचेमें शाक-सब्जी-फल आदि उत्पन्न करना एवं पेड़में पानी देना अधिक मंगलजनक है। वैष्णव सेवाके फलसे हरिनामके प्रति निष्कपट रुचि होगी।

(ग) वैष्णवोंका अनुकरण मत करो, डूब मरोगे। उनकी निष्कपट सेवाकी कामना एवं प्रार्थना करो।

(घ) साधारण चोरका कभी तो मंगल हो सकता है, किन्तु गुरु-वैष्णवके अर्थभोगीका कदापि मंगल नहीं होता।

(ङ) आनुगत्य ही श्रेष्ठ सदाचार है, स्वतन्त्रता ही भ्रष्टाचार है।

(च) कृत्रि मस्मरण-पद्धति रूपानुग पथ नहीं है।

(छ) श्रीनाम-कीर्तन द्वारा स्वाभाविक स्मरण ही गौड़ीय वैष्णवोंका सिद्धान्त है।

(गौड़ीय, १७ वर्ष, ५०४–५०२ पृष्ठ)

कृष्ण-प्रेमरहित जीवनकी व्यर्थता

वञ्चितोऽस्मि वञ्चितोऽस्मि वञ्चितोऽस्मि न संशयः
विश्वं गौररसे मग्नं स्पर्शोऽपि मम नाभवत् ॥

मैं वञ्चित हूँ, मैं वञ्चित हूँ, निश्चय ही मैं वञ्चित हूँ। श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेमरस सागरमें सारा विश्व डूब गया, किन्तु हाय! उसका मुझमें लेशमात्र भी स्पर्श न हुआ।

कैर्वा सर्वपुमर्थमौलिरकृतायासैरिहासादितो
नासीद्गौरपदारविन्दरजसा स्पृष्टे महीमण्डले।
हा हा धिङ् मम जीवनं धिगपि मे विद्यां धिगाश्रमं
यद्दौर्भाग्यभराद्दहो मम न तत्सम्बन्धगन्धोऽप्यभूत् ॥

श्रीगौरपादपद्मपराग द्वारा भूतल स्पृष्ट होनेपर कौनसे व्यक्तिने ही अनायास ही सर्वपुरुषार्थशिरोमणि प्रेम प्राप्त नहीं किया? अर्थात् सभीने ही प्राप्त किया। किन्तु हाय! हाय! अत्यन्त दुर्भाग्यके कारण मैं उस प्रेमका लेशमात्र भी प्राप्त नहीं कर पाया। मेरे जीवनको धिक्कार है, मेरे पाण्डित्यको धिक्कार है, मेरे तुरीय त्रिदण्डि-संन्यासाश्रमको धिक्कार है।

उत्ससर्प जगदेव पूरयन् गौरचन्द्रकरुणा महार्णवः।
बिन्दुमात्रमपि नापतन्महादुर्भगे मयि किमेतदद्भुतम् ॥

श्रीगौरांग महाप्रभुका करुणारूप-महासमुद्र सारे जगत्को प्लावित कर उथल पड़ा। किन्तु क्या आश्चर्य है, मुझ दुर्भगे पर उनका बिन्दु मात्र भी नहीं गिरा।

(श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद कृत श्रीचैतन्यचन्द्रामृतसे)